15

वेदान्त

प्रस्तावना

वेद के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद चार भागों में अन्तिम उपनिषद् ही वेदान्त शब्द द्वारा कहा जाता है। वेद का अन्त वेदान्त है (वेदस्य अन्तः वेदान्तः), यह वेदान्त शब्द का निर्वचन है। अन्त शब्द का सामान्य अर्थ 'अन्तिम' होता है। उसके द्वारा वेद के अन्तिम में उपनिषद् होने से उसका ही उपनिषद् शब्द के द्वारा व्यवहार है। कुछ संहिता भाग में भी उपनिषद् दिखता है यथा ईशोपनिषद्। उसमें वेदान्त शब्द की इस प्रकार व्याख्या होती है- वेद का अन्त अर्थात् सार ही उपनिषद् है। कैसे निखिल निगम का सार उपनिषद् कहलाता है। कहा जाता है यहाँ ब्रह्मविद्या उपदिष्ट है। और इसके अनुष्ठान द्वारा मानव चरम पुरूषार्थ मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अत एव इसका माहात्म्य सर्वोपरि है। उपनिषद् के अध्ययन द्वारा ही कैसे वह प्राप्त हो सकता है, इसमें उपनिषदों में ही प्रमाण विद्यमान है- ''तं त्वौपनिषदं पुरूषं पृच्छामि, वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था इत्येवम्''। वेदान्त दर्शन का ही अन्य नाम उत्तर मीमांसा होता है। इस पाठ में वेदान्त दर्शन के विविध मतों और उनके प्रतिपादित मुख्य तत्वों की आलोचना की जाएगी।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- वेदान्त क्या है, यह जान पाने में;
- वेदान्त के अन्य नाम जान पाने में;
- वेदान्त परम्परा का ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- वेदान्त सम्प्रदाय कितने हैं, जान पाने में;

- अद्वैत वेदान्त के विषय में सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- शुद्धाद्वैत विषयी धारणा को अर्जित कर पाने में;
- अचिन्त्य भेदाभेद के विषय में जान पाने में।

15.1 वेदान्त दर्शन का आरम्भ

भगवान् बादरायण ने ज्ञानकाण्डात्मक उपनिषद् भाग के अर्थ-विस्तार के लिए तथा वेद विरूद्ध-मतों के निराकरण के लिए सूत्रात्मक ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ के चार अध्याय होते हैं। प्रथम अध्याय का नाम समन्वयाध्याय है। द्वितीय अध्याय का नाम अविरोधाध्याय है। तृतीय अध्याय का नाम साधन अध्याय हैं चतुर्थ अध्याय का नाम फलाध्याय है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में अनेक अधिकरण होते हैं। चार अध्यायों में 555 सूत्र होते हैं। इस ग्रन्थ के ही अन्य नाम हैं- उत्तर मीमांसा, शारीरिक सूत्र, वेदान्त सूत्र, ब्रह्म सूत्र इत्यादि। इस ग्रन्थ को आधारित करके ही शंकराचार्य आदि विविध दार्शनिकों ने स्वयं भाष्य रचें। उस भाष्य के अनुसार ही उनका दर्शन प्रवृत्त हुआ। वेदान्त में प्रसिद्ध दश मत होते हैं।

सम्प्रदाय का नाम	प्रवर्तक	काल (ईस्वी)	भाष्य का नाम
निर्विशेषाद्वैत	शंकराचार्य	788-820	शारीरिक भाष्य
भेदाभेद	भास्कराचार्य	850	भास्कर भाष्य
विशिष्टाद्वैत	श्रीरामानुजाचार्य	1140	श्रीभाष्य
द्वैत	माध्वाचार्य-आनन्दतीर्थ	1288	पूर्णप्रज्ञ भाष्य
द्वैताद्वैत	निम्बार्क	1250	वेदान्तपरिजात भाष्य
शैवविशिष्टाद्वैत	श्रीकण्ठ	1270	शैवभाष्य
वीरशैव विशिष्टाद्वैत	श्रीपति	1400	श्रीकरभाष्य
शुद्धाद्वैत	वल्लभाचार्य	1478-1544	अणुभाष्य
अविभागाद्वैत	विज्ञानभिक्षु	1600	विज्ञानामृत
अचिन्त्यभेदाभेद	बलदेव	1725	गोविन्दभाष्य

15.2 अद्वैत दर्शन

वेदान्त दर्शनों में सर्वदर्शन शिरोरत्नभूत अद्वैत दर्शन होता है। अद्वैत दर्शन के प्रवर्तक हैं आचार्य शंकर। इस आचार्य के द्वारा सूत्रों के ऊपर लिखित भाष्य शांकर भाष्य के नाम

से प्रसिद्ध है। इस दर्शन में एक वस्तु की ही सत्ता स्वीकार की जाती है और वह ब्रह्म है। यह दर्शन अन्य (दर्शन) से वैशिष्ट्य रखता है। यथा केवल इसमें ही जगत् मिथ्या है। जगत का अभिन्न निमित्त-उपादान कारण ब्रह्म होता है। ब्रह्म जगत की परिणति नहीं विर्वत है। बहुजीववाद स्वीकार नहीं करते, सोपाधिक ब्रह्म ही जीवत्व है। जीव-ब्रह्म का ऐक्य ही मोक्ष है। आगे इस विषय में विस्तार से प्रतिपादित है।

15.2.1 आचार्य परम्परा-

अद्वैत दर्शन साक्षात् शिव से प्रारब्ध है, यह सम्प्रदायविद का वचन है। जैसे अद्वैत सम्प्रदाय में प्रसिद्ध श्लोक है-

सदा शिवसमारम्भां शंकराचार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरूपरम्पराम्॥

यद्यपि भगवान् शंकराचार्य इसके प्रवर्तक कहे जाते हैं तथापि इससे पहले अनेक आचार्यों ने इस दर्शन को प्रचारित किया। अद्वैत आचार्य परम्परा के विषय में अन्य श्लोक भी प्रसिद्ध है-

नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रम्।

अथास्य शिष्यं श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मादञ्च हस्तामलकञ्च शिष्यम्।
तं तोटकं वार्तिककारमन्यान् अस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि॥

शंकर से पहले कुछ आचार्य

द्रविड़ाचार्य- यह आचार्य उपनिषदों के भाष्यकार थे, यह सम्प्रदाय है। शंकर भगवत्पाद ने बृहदारण्यक भाष्य में इनको सम्प्रदाय विद् के रूप में व्याख्यायित किया है। श्रीभाष्यकार रामानुजाचार्य ने भी 2.1.14 सूत्र के भाष्य में किसी द्रविड़ आचार्य के विषय में कहा है। दोनों समान व्यक्ति है, यह अनेक विद्वानों का मत है। मधुसूदन सरस्वती रचित संक्षेप शारीरिक टीका में ब्रह्मनन्दी विरचित वाक्य के सूत्र रूपों के भाष्यकर्ता द्रविड़ाचार्य है, ऐसा सुचित है। आनन्दगिरि, तोटकाचार्य इत्यादि बहुत से आचार्यों ने इनका उद्धरण दिया है।

ब्रह्मनन्दी- आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने संक्षेप से शारीरक के 3/217 श्लोक की टीका में ''ब्रह्मनन्दी'' में इसका नामोल्लेख किया। यह आचार्य छान्दोग्योपनिषद् के वाक्यकार थे, ऐसी प्रसिद्धि है। इसके विषय में स्पष्ट प्रमाण कुछ भी उपलब्ध नहीं होता है।

गौड़पादाचार्य- इनका काल छठी शताब्दी है, ऐसा विद्वानों का मानना है। महर्षि पतञ्जलि इनके गुरू थे, तथा व्यास पुत्र शुकः गुरु थे, ऐसी कुछ समालोचना करते हैं यद्यपि

टिप्पणी

उस कथन में कोई भी योग्य प्रमाण नहीं है। उत्तरगीता व्याख्या, पञ्चीकरण वार्तिक, नृसिंहतापनीयभाष्य, अनुगीताभाष्य इत्यादि अनेक ग्रन्थ गौड़पाद द्वारा प्रणीत होने से प्रसिद्ध हैं। उसमें माण्डूक्यकारिका, माण्डूक्योपनिषद् को अधिकृत करके लिखी गई अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिष्ठापिका रूप में बहुप्रसिद्ध है। इस कारिका ग्रन्थ के चार प्रकरण होते हैं। उसके नाम यथाक्रम हैं- आगम प्रकरण, वैतथ्य प्रकरण, अद्वैत प्रकरण, अलातशान्ति प्रकरण। ये आचार्य शंकर भगवत्पाद के परम गुरू हैं। इस प्रकार लिखित माण्डूक्यकारिका शंकरभगवत्पाद द्वारा भी व्याख्यायित हैं। उसमें ही व्याख्यान के अन्त में शंकरभगवत्पाद ने इनको इस प्रकार प्रणाम किया है- ''तं वै पूज्याभिपूज्यं परमगुरूममुं पादपादैर्नतोऽस्मि।''

शंकराचार्य- आठवें शतक में (788 ईस्वी में) केरल प्रदेश में इस आचार्य ने शिवगुरू नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में जन्म प्राप्त किया। ये आचार्य गोविन्दपाद के शिष्य तथा गौड़पादाचार्य के परम शिष्य हैं। व्यास की आज्ञा से ही आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा, यह रूढ़ है। शंकरभगवत्पाद ने ब्रह्मसूत्र को छोड़कर भी दस उपनिषदों तथा श्रीमद्भगवद्गीता की अद्वैत परक भाष्य की रचना की। और विवेकचूड़ामणि, उपदेशसाहस्री इत्यादि ग्रन्थों के तथा मोहमुद्गरादि स्तोत्रों के प्रणेता शंकरभगवत्पाद हैं।। जिन उपनिषदों के भाष्य आचार्य द्वारा लिखे गए हैं, वे हैं-

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् का भाष्य भी शंकराचार्य के द्वारा कृत है, ऐसा भी माना जाता है। उस समय में विद्यमान पूर्व मीमांसा दर्शन के प्रबल तेज को शम करके अद्वैत दर्शन का विजयरथ सम्पूर्ण भारत में चला। इनके द्वारा संन्यास आश्रम के दशनामि सम्प्रदाय की सृष्टि हुई और भारत के चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित (प्रतिष्ठापित) हुए। इनके चार शिष्य प्रसिद्ध हैं- पद्माचार्य, तोटकाचार्य, सुरेश्वराचार्य और हस्तामलकाचार्य। 820 शताब्दी में शंकराचार्य ने स्वधाम प्राप्त किया। आचार्य के जीवन के विषय में यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है -

''अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।''

शंकर से परवर्ती कुछ आचार्य

पद्पादाचार्य - इनका समय 800 ईस्वी था। यह शंकराचार्य के साक्षात् शिष्य थे। आश्रम स्वीकार करने से पूर्व का नाम सनन्दन था, और पिता विमल नामक ब्राह्मण थे। इनके द्वारा शंकराचार्य रचित चतुः सूत्री भाष्य के ऊपर पञ्चपादिका नामक व्याख्यान किया गया। इनके द्वारा लिखे गए अन्य ग्रन्थ हैं, यथा विज्ञानदीपिका, आत्मबोधव्याख्या, आत्मानात्मविवेकव्याख्या, तत्वमसिपञ्चक इत्यादि।

सुरेश्वराचार्य- यह आचार्य वार्तिककार नाम से सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। शंकरलाल ही

इसका काल है। इनके द्वारा शंकराचार्य की आज्ञा से ही भाष्य के ऊपर वार्तिक लिखा गया। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, यथा तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यवार्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, नैष्कर्म्यसिद्धि, प्रणवार्थकारिका। प्रसिद्ध मीमांसक मण्डनमिश्र ही शंकराचार्य से वाद में पराजित होकर सुरेश्वराचार्य के रूप में शिष्य हुए, यह भी कुछ लोग कहते हैं।

प्रकाशात्मयति- अन्यानुभव के शिष्य प्रकाशात्मयति का अपर नाम स्वयम्प्रकाशानुभव था। ये ग्यारहवीं शताब्दी में हुए थे, ऐसा कहा जाता है। इनके द्वारा पञ्चपादाचार्य विरचित पञ्चपादिका को अवलम्ब्य करके पञ्चपादिका विवरण नामक व्याख्यान विहित है। इस व्याख्यान को आश्रय बनाकर आगे विवरणप्रस्थान, यह नूतन सम्प्रदाय आरम्भ हुआ।

वाचस्पति मिश्र- इस आचार्य का काल नवम शताब्दी का मध्य भाग है। यह मिथिला देशीय थे, ऐसा सुना जाता है। वेद, धर्मशास्त्र, सांख्य, योग आदि विषयों में वाचस्पति नाम से अनेक ग्रन्थ प्रणीत प्राप्त होते हैं। इस आचार्य ने सूत्रभाष्य के ऊपर भामती नामक टीका रची। बाद में इस टीका को आधार बनाकर भावदीपिका-भामतीविलास-कल्पतर्वदि ग्रन्थ लिखे गए। इस टीका को आश्रित करके सूत्रभाष्य का एक प्रस्थान ही आरम्भ हुआ, यह भामती प्रस्थान है।

आनन्दगिरि- संन्यास स्वीकार करने से पूर्व का नाम जनार्दन था। सन्यास से यह आनन्दज्ञान, आनन्दगिरिक, इन नामों से कहे गए। यह 'द्वारका-शंकरपीठाधीश थे। प्रकटार्थविवरणकार, अनुभूतिस्वरूपाचार्य इनके विद्यागुरू तथा शुद्धानन्द दीक्षागुरू थे। इनका काल तेरहवीं शताब्दी है। सम्पूर्ण प्रस्थानत्रयी के ऊपर जो शांकरभाष्य उपलब्ध है, उसका सम्पूर्ण व्याख्यान इस आचार्य ने किया।

15.2.2 ब्रह्म

अद्वैत दर्शन में द्वितीय किसी भी वस्तु का यथार्थ स्वीकार नहीं किया जाता है। अतः द्वितीय के निषेध से यह अद्वैत कहलाता है। जैसे-

द्विधेतं द्वतीमित्याहुः तद्भावो द्वैतमुच्यते।
तन्निषेधेन चाद्वैतं प्रत्यग्वस्त्वभिधीयते॥

अद्वैत दर्शन में जो ब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादित है वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। और वह निर्गुण, निष्क्रिय, शान्त और अवाङ्मनसगोचरम् (मन के द्वारा अग्राह्य) है। क्योंकि इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप वाणी द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता अतः नेति नेति मुख द्वारा सर्वत्र उपदिष्ट है। अतः अद्वैत शब्द का अर्थ द्वैत का निषेध होता है, शुद्ध अद्वैत का प्रतिपादन न हो सकने के कारण। जैसे श्रुतियाँ हैं- ''न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः (केन.उ. 2.4), यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह (तै.उ. 2.4), न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा (मं.उ. 3.1.8), अदृश्यमव्यवहार्यम् अग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमत्यपदेश्यम् (मा. उ. 2.5), अस्थूलमनु। ब्रह्म के एकत्व को प्रतिपादित करने के लिए श्रुति में उक्त है-

टिप्पणी

एकमेवाद्वितीयम्। उसका अर्थ होता है- सजातीय-विजातीय-स्वगत भेदशून्य ब्रह्म। तीन प्रकार के भेद कैसे होते हैं, इस विषय में पञ्चदशी में स्पष्ट कहा गया है-

''वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादितः।
वृक्षान्तरात् सजातीयो विजातीयः शिलादितः।'' (2/20)

ब्रह्म सर्व विस्तृत सर्व व्यपक, सभी पदार्थों में अनुस्यूत रूप से विद्यमान रहता है। प्रमाण है, यथा-सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्। और-

''ब्रह्मैवेदम् अमृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतृचोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ (मं.उ. 2.1.11)

स्मृति में भी उक्त है- 'मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव। अतएव ब्रह्म विज्ञान होने पर भी सर्वज्ञान होता है, यह अद्वैत सिद्धान्त है। ब्रह्म से भिन्न को अस्वीकार करने तथा अद्वैत सिद्धान्त की स्थापना के लिए यह छान्दोग्य-वाक्य दृढ़ प्रमाण है - उत तमादेशमप्राक्ष्य येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति (छां.उ. 6.1.3)। तथा मुण्डकवाक्य- 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति' (मु.उ. 1.1.3)। यहाँ एक को जानने पर सभी जान लिया जाता है। द्वितीय किसी भी वस्तु की सत्ता स्वीकार करने पर यह प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं होती है। यह ब्रह्म ही जगत का उपादानकारण और निमित्त कारण है। क्योंकि अद्वैत दर्शन में ब्रह्म से भिन्न अन्य किसी की भी सत्ता स्वीकार नहीं की जाती है, अतः दोनों कारण ब्रह्म ही होते हैं, अन्य कोई भी नहीं। जगत् के जन्म आदि का कारणत्व ही ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। इस कथन में द्वितीय सूत्र प्रमाण है- 'जन्माद्यस्य यतः'। ब्रह्म के जगतकारणत्व में ये श्रुतियाँ उदाहरण हैं- यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभ्झिसंविशन्ति (तै.उ. 3.1), तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति (मुं.उ. 2.1.1)

''यथोर्णनाभिः सृजते गह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा स्वतः पुरूषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥
(मु.उ. 3.1.1.7)

15.2.3 जगत

अद्वैत में जिस प्रकार ब्रह्म प्रतिपादित है, उसी प्रकार ब्रह्म से किसी भी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती है तो दृश्यमान जगत् कैसे सम्भूत हुआ, यह प्रश्न स्वाभाविक है। इसमें कहा जाता है- जैसे मृदा से घट उत्पन्न होता है वैसे ब्रह्म से जगत उत्पन्न नहीं है। अद्वैतियों के मत में जगत् तो सत्य नहीं है अपितु मिथ्याभूत है। जैसे अज्ञान के कारण शुक्ति में रजत् प्रतीत होता है वैसे ही ब्रह्म में जगत उत्पन्न होता है। अतः जगत के मिथ्यात्व में कोई भी आपत्ति नहीं है और निर्धर्म, निर्गुण निष्क्रिय ब्रह्म से उत्पन्न होने में भी नहीं। अद्वैत सम्प्रदाय में यह प्रसिद्ध वचन होता है- ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो

ब्रह्मैव नापरः''। अज्ञान के कारण यथा सर्प रूप में प्रतीत होता है वैसे ही निर्विशेष ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रतीत होता है। रज्जु में यथा परमार्थतः सर्प कभी भी नहीं था, वैसे ही जगत् परमार्थ रूप में कभी नहीं होता है। क्योंकि जगत् न उत्पन्न होता है उससे उसका नाश अथवा विनास सम्भव नहीं होता है। गौड़पदाचार्य के द्वारा माण्डूक्यकारिका में कहा गया है-

'प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेत न संशय'। अतः अद्वैतवाद अजातवाद भी कहलाता है। यद्यपि अद्वैतियों के द्वारा भी व्यावहारिक दशा में जगत की सत्ता स्वीकार की जाती है।

15.2.4 माया

माया ब्रह्म की शक्ति विशेष है और उससे ही उत्पन्न है। माया के अन्य नाम हैं- यह माया अज्ञान, अविद्या, प्रकृति, अक्षर, अव्यक्त इत्यादि शब्दों से व्यवहृत है। कुछ इस प्रकार कहते हैं, सत्व, रजस् और तमो गुणों की साम्यावस्था प्रकृति कहलाती है। उसके ही दो भेद हैं। शुद्ध सत्व प्रधान माया होती है। मलिन, सत्व प्रधान अविद्या होती है। किन्हीं के मत में ईश्वर की उपाधि माया और जीव की उपाधि अविद्या है।

माया का स्वरूप क्या है तो माया न सत् है और न असत्। तीनों कालों में जिसका बाधा नहीं होता है, वह सत् है। सत् पदार्थ तो ब्रह्म ही है, माया नहीं, उसके ब्रह्म-ज्ञान के अतिरिक्त बाधित होने के कारण। जो कभी भी प्रतीत नहीं होता है, वह असत् है। यथा आकाश-कुसुम, खरगोश के सींग इत्यादि। माया तो प्रतीत होती है, अतः असत् नहीं है। इस प्रकार माया सदसद्भ्यामनिवर्चनीय है। शंकर भगवत्पाद द्वारा विवेकचूड़ामणि में माया का स्वरूप कहा गया है- सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका सान्नाप्यनन्नाप्युभयात्मिका नो महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा नो।। माया गुणत्रय सत्व, रजस्, तमस् का समूह होती है। माया के त्रिगुणत्व में विद्वान इस प्रकार श्रुतिवाक्य को प्रमाण रूप में देखते हैं- अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्। यहाँ लोहित, शुक्ल, कृष्ण वर्णीय यथाक्रम रजस्, सत्व, तमस् के लिङ्ग के भूत हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है- दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्या। माया अज्ञान शब्द के द्वारा व्यवहृत हैं। अज्ञान शब्द का अर्थ है- ज्ञान का अभाव। अज्ञान अभाव पदार्थ नहीं है। इसमें अज्ञान शब्द नए अर्थ अभाव में नहीं अपितु विरोध अर्थ में स्वीकरणीय है। इस प्रकार अज्ञान शब्द का अर्थ ज्ञानविरोध ी होता है। ज्ञान को आच्छादित करता है वह अज्ञान है। यह भी मन में स्थापित करके सदानन्दयोगी के द्वारा अज्ञान का लक्षण उक्त है- 'अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मक ज्ञानविरोधियत्किञ्चित', ऐसा कहते हैं।

15.2.5 जीव स्वरूप

अद्वैत में तो ब्रह्म से जीव भिन्न नहीं है। ब्रह्म ही माया के संसर्ग से उपाधि परिच्छिन्न सत् जीव रूप में कहा जाता है। अतएव यहाँ बहुजीववाद सम्भव नहीं होता है जीव

का परिणाम भी विभु-परिणाम कहलाता है। जीव के विषय में अद्वैत में तीन मत हैं। और वे प्रतिबिम्बवाद पर आश्रित अवच्छेदवाद पर आश्रित और आभासवाद पर आश्रित होकर उत्पन्न होते हैं। प्रतिबिम्बवाद में अज्ञान में चित्प्रतिबिम्ब ही जीव है। अवच्छेद पक्ष में अन्तः करण से अवच्छिन्न चैतन्य ही जीव है। किन्हीं का मत है कि ब्रह्म का आभासमात्र ही जीव है।

15.2.6 प्रमाण

अद्वैत वेदान्त में छः प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। वे हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि।

15.2.7 मोक्ष का स्वरूप और उनके साधन

ब्रह्मेक्य अनुभूति ही मोक्ष है। इसीलिए निर्गुण ब्रह्म-विद्यानुशीलनकारियों की 'अहं ब्रह्मास्मि', इस कारिका की अनुभूति ही मोक्ष कही जाती है। यह मोक्ष अद्वैत में किसी नूतन वस्तु की प्राप्ति नहीं है। यथा कण्ठस्थ मणिमाला अज्ञान के कारण गई हुई प्रतीत होती है तत्पश्चात् उसका ज्ञान होने पर वह प्राप्त ही होती है वैसे ही जीवों की मोक्ष-प्राप्ति है। वस्तुतः जीव का ब्रह्म के साथ अभेद ही है, अज्ञान के कारण भेद माना जाता है। अज्ञान-नाश होने पर ही अपने स्वरूप का ज्ञान सम्भव होता है, तब मुक्ति होती है। अतः ज्ञान से ही मोक्ष है, कर्म से नहीं। कर्म तो चित्तशुद्धि के प्रति परम्परा से कारण हो सकता है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है-

'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः ततस्तु तं पश्यति निष्फलं ध्यायमानः। (3.1.8)

मोक्ष-प्राप्ति के लिए कैसे यत्न करने चाहिए- शम, दम आदि षटक् सम्पत्ति सम्पन्न अधिकारी निष्काम रूप में नित्य, नैमित्तिक आदि कर्म का आचरण करता है तो उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है। शुद्ध अन्तःकरण से ही आत्मदर्शन सम्भव होता है। इसीलिए शंकराचार्य का वचन है कि शास्त्रचार्योपदशे युक्ति शम, दम आदि से संस्कृत मन आत्मदर्शन में करण होता है। इस प्रकार शुद्ध-चित्त अधिकारी के द्वारा श्रवण-मनन-निदिध्यासन अभ्यास किया जाना चाहिए। ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'', इस श्रुति-प्रमाण के कारण श्रवण, मनन, निदिध्यासन ही आत्म साक्षात्कार में उपायभूत हैं। और इनके अभ्यास के द्वारा जब 'अहं ब्रह्मास्मि', यह कारिका अनुभूत होती है तब यथार्थ अनुभव होता है। तभी 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', इसका सम्यक् अनुभव होता है और जगत् स्वप्न के साथ मिथ्या प्रतीत होता है।

15.2.8 मोक्ष का फल

जन्म, मरण के लक्षण रूप संसार-चक्र से मुक्ति ही मोक्ष है। संसार ही बन्ध है। जब

ब्रह्मैक्य की अनुभूति होती है तब जगत् मिथ्या प्रतीत होता है। इस प्रकार मिथ्याभूत जगत में जीव का पुनरागमन सम्भव नहीं होता है। श्रुति में भी उसका पुनरार्वतन नहीं होता है, इस मुक्त का पुनः संसार चक्र में आवर्तन निरूद्ध है। स्मृति में भी उक्त है- 'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते'। इस प्रकार दुःख रूप संसार-चक्र को भेद कर ब्रह्म रूप होकर आनन्द का अनुभव ही मोक्ष का फल है।

पाठगत प्रश्न 15.1

1. उत्तरमीमांसा दर्शन किसका अन्य नाम है?
2. वेदान्त दर्शन किस ग्रन्थ को आधारित करके प्राप्त हुआ?
3. वेदान्त शब्द द्वारा क्या कहा जाता है?
4. वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक कौन हैं?
5. ब्रह्मसूत्र में कितने अध्याय हैं? उनके नाम लिखिए।
6. अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक कौन हैं?
7. अद्वैत वेदान्त में शंकर परवर्ती तीन आचार्यों के नाम लिखें।
8. सुरेश्वराचार्य के गुरू कौन हैं?
9. अद्वैत शब्द का अर्थ दिखाएँ/बताएँ।
10. पञ्चपादिका किसके द्वारा रचित है, और किस पर आधारित है?
11. ब्रह्म का स्वरूप लक्षण क्या है?
12. ब्रह्म का तटस्थ लक्षण क्या है?
13. जीव का अद्वैत में क्या स्वरूप और क्या परिमाण है?
14. अद्वैत में जगत् किस प्रकार का है?
15. अद्वैत वेदान्त में कितने प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं और वे क्या हैं?

15.3 शुद्धाद्वैत

शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक हैं- वल्लभाचार्य। इनके द्वारा आचार्य शंकराचार्य के द्वारा अद्वैतवेदान्त में प्रतिपादित मायावाद के प्रमाण का खण्डन करके शुद्धाद्वैत का प्रतिष्ठापन किया गया। और निगुण रूप प्रेम-लक्षण का भक्ति के द्वारा प्रचार किया। इसका ही व्यावहारिक

स्वरूप पुष्टिमार्ग है। इस दर्शन में कारण रूप से और कार्यरूप से ब्रह्म शुद्ध ही रहता है। गोस्वामी गिरिधराचार्य के द्वारा कहा गया है-

''माया सम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकरणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मापिकम्''॥

शुद्धाद्वैत शब्द का निवर्चन- शुद्धाद्वैत शब्द दो प्रकार से व्युत्पन्न है-

1. शुद्धयोः अद्वैत शुद्धाद्वैतम्, यह षष्ठी तत्पुरूष है। उस नाम का तात्पर्य है - शुद्ध जगत्-जीव के ब्रह्म से अद्वैत का अभिन्नत्व शुद्धाद्वैत जगत और जीव के ब्रह्म से अभिन्न ही है।

2. शुद्धं च अद्वैतं च शुद्धाद्वैतमिति कर्मधारयः।

उसका अर्थ है- ब्रह्म का जो अद्वैत है वह शुद्ध माया सम्बन्ध से रहित है।

15.3.1 आचार्य परम्परा

यद्यपि शुद्धद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य है तथापि उनके द्वारा रूद्र सम्प्रदाय का ही मत अभिनवरूप में उपस्थापित है, ऐसा कुछ विद्वान कहते हैं। रूद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी हैं। अतः शुद्धाद्वैत की आचार्य परम्परा में इसके विषय में चर्चा विहित है।

विष्णु स्वामी- वैष्णवों के जो चार सम्प्रदाय हैं, उनमें यह आचार्य रूद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इस आचार्य का समय तेरहवीं शताब्दी के मध्यभाग का था। प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामी के द्वारा स्वभावार्थ टीका में विष्णु स्वामी रचित सर्वज्ञसूक्त का अनेक बार उल्लेख किया गया। सैद्धान्तिक पक्ष और व्यावहारिक पक्ष में वल्लभाचार्य के द्वारा इस आचार्य से अपना मत भिन्न रूप में सम्पादित किया गया है। अत एव परमार्थ पक्ष में शुद्धाद्वैत का, व्यावहारिक पक्ष में पुष्टि मार्ग का विधान हुआ है।

वल्लभाचार्य- इस दर्शन के प्रवर्तक आचार्य यज्ञ नारायणभट्ट के वंशज थे। यद्यपि इनके काल के विषय में अनेक मत हैं तथपि सोलहवीं शताब्दी इनका काल है, ऐसा साम्प्रदायिकों का मत है। वाराणसी में अधीत यह शास्त्र स्वकुशाग्रधीकार से बाल-सरस्वती-वाक्पति, इस उपाधि द्वारा भूषित है। यद्यपि इस आचार्य के द्वारा लिखित चौरासी (84) ग्रन्थ हैं, ऐसी सम्प्रदाय में प्रसिद्धि है तथपि तीस (30) ही अब उपलब्ध होते हैं। कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, यथा-

अणुभाष्यम्- ब्रह्मसूत्र के ऊपर लिखित भाष्य

सुबोधिनी- श्रीमद्भगवद् की टीका

पूर्व मीमांसा भाष्य- जैमिनि सूत्र का भाष्य

गोपीनाथ- यह वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र हैं। वल्लभाचार्य के प्रयाण के अनन्तर इनके द्वारा ही सम्प्रदाय स्वयं के हाथों से रक्षित है। यह महान् विद्वान शास्त्रों में भी निरूपित हैं। यद्यपि साधनदीपिका नामक एक ही ग्रन्थ उपलब्ध होता है परन्तु और भी तीन ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। वे सेवाविधि, नामनिरूपणविधि और वल्लभाष्कम् हैं।

विट्ठलनाथ- वल्लभाचार्य के कनिष्ठ पुत्र इन्होंने सोलहवें शतक में जन्म प्राप्त किया। मेधावी इन्होंने उन्नीस (19) वर्ष में ही वेद और श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया। सम्प्रदाय में इनकी प्रसिद्धि है- अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्धासक्तपदाम्बुज। इस विद्वान के प्रायः पचास (50) ग्रन्थ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं। उनके मध्य में प्रमुख हैं- यथा-श्रीवल्लभाष्टक, श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृत, श्रीयमुनाष्टपदी, ललितत्रिभन्नस्तोत्र इत्यादि।

गोस्वामी गिरिधराचार्य- यह विट्ठलनाथ के ज्येष्ठ पुत्र थे। 45 वर्ष की आयु में इन्होंने आचार्य पदवी को प्राप्त किया। इनके द्वारा दो ग्रन्थ रचित हैं- यथा गद्यमन्त्र टीका और उत्सर्वनिर्णयस्तोत्र।

15.3.2 ब्रह्म

ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। यहाँ ब्रह्म में सविशेष और निर्विशेष द्वैविध्य व्याप्त नहीं है। एक ही ब्रह्म 'अस्ति' वाची शब्द द्वारा सगुण रूप में निरूपित है और 'नास्ति' वाची शब्द द्वारा निर्गुण रूप में निरूपित है। व्यावहारिक अवस्था में ब्रह्म जगत की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कर्ता है। ब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है। सविशेष ब्रह्म नाम, रूप के द्वारा व्याकृत तथा उपाधि विशिष्ट होता है। यह स्वरूप ही ईश्वर बहुत इष्ट होता है। नाम, रूप आदि से अव्याकृत निरूपाधिक निर्विशेष ब्रह्म होता है। यही परमात्मा कहलाता है। यही यथार्थ स्वरूप ब्रह्म का निर्विकल्पक, निराकार रूप सत् है।

यहाँ ब्रह्म के दो स्वरूप स्वीकार किये जाते हैं। वल्लभमतानुसार ब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वस्वतन्त्र तथा सर्वव्यापक गुणरहित सर्वज्ञ है। ऐश्वर्य आदि षड् गुणों से युक्त होने पर भी वह सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदों से शून्य होता है। वही प्रकृति के रूप में भोग्य होता है, पुरूष के रूप में भोक्ता होता है तथा दोनों का नियामक ईश्वर भी है। ब्रह्म के अनन्त रूपों के सत्व होने पर भी वह कूटस्थ सर्वविरूद्ध धर्मो का आश्रयभूत तर्क के द्वारा अगम्य होता है।

यहाँ भी ब्रह्म जगत का अभिन्न, निमित्त उपादान कारणत्व स्वीकृत है। यथा मृत्पिण्ड को जानकर सभी मुद्राओं का भी ज्ञान सम्भव हो जाता है, वैसे ब्रह्म का ज्ञान होने पर उससे उत्पन्न जीवों और जगत् का ज्ञान सम्भव होता है। जैसे मृदा भी सत्य है और उसका विकार घट भी सत्य है, उसी प्रकार ब्रह्म सत्य है और उससे उत्पन्न जगत् जीव भी सत्य है। इस प्रकार ब्रह्म का निगुणत्व तथा अनन्त गुणत्व जो एक में विरोधी नहीं है वह प्रतिपादित होता है। वल्लभ के मत में यथा सर्प कभी कुण्डली

रूप में रहता है और कभी रज्जु के समान लम्बा रहता है। उसी प्रकार ब्रह्म के भी दो रूप होते है। निर्गुण ब्रह्म भी भक्तों की कामना के अनुसार अनेक रूप धारण करते हैं।

बालकृष्णभट्ट के मतानुसार श्रीकृष्ण ही पर ब्रह्म पुरूषोत्तम हैं। श्रीमद्भगवतगीता के वचन के कारण श्रीकृष्ण के निर्विशेषत्व आदि गुण वर्णित हैं। यथा- मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय। अपाणिपादो जनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः इत्यादि श्रुति वाक्यों का श्रीकृष्ण मे अन्वय सिद्ध होते हैं। शुद्धाद्वैत मतानुसार ब्रह्म के दो रूप कहे जा सकते हैं, उनमें एक हैं परब्रह्म पुरूषोत्तम और अपर (अन्य) है अक्षर ब्रह्म।

परब्रह्म पुरूषोत्तम- श्रीकृष्ण ही द्विभुज (दो भुजाओं वाले) अथवा चतुर्भुज (चार भुजाओं वाले) होते हुए वृन्दावन अथवा वैकुण्ठ आदि स्थानों पर उनके ध्यान में संलग्न भक्तों के साथ रमणीयता से रहते हैं। और भक्त उनके साथ आनन्द का अनुभव करते हैं।

अक्षरब्रह्म- श्रीकृष्ण ही समग्र प्रपञ्च का कारणस्वरूप होते हैं। इसीलिए उनकी जब प्रजा के लिए इच्छा होती है तब उससे आनन्दांश का तिरोभाव होता है। कोई नवीन रूप आविर्भूत होता है तब जो सभी कारणों का कारण है। यही अक्षरब्रह्म शब्द का वाच्य है। और श्रीमद्भागवत में उक्त है- ''तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्''। (3/11/41) इस अदृश्यत्व आदि गुणस्वरूप अक्षर से ही देवता, मनुष्य, गन्धर्व आदि भूतों की उत्पत्ति होती है।

15.3.3 जीव का स्वरूप

भगवान् ही रमण की इच्छा से आत्मा के आनन्दांश के तिरोधान के लिए केवल सत्-रूप चिदंश के द्वारा आत्मा को बहुत प्रकार से प्रकट करते हैं। उसकी इच्छा से अनेक प्रजाएँ उत्पन्न होती है, यह श्रुति वाक्य ही इस प्रकार के मत के पोषक हैं। ईश्वर का ही यह नूतन रूप जीव कहलाता है। अत जीव की उत्पत्ति नहीं होती है, देहधारणवश उत्पन्न होता है, मरता है इत्यादि व्यवहार सम्भव हैं। शुद्धाद्वैत में जीव अणुपरिमाण होता है। यहाँ जीव के तीन भेद होते हैं। वे हैं- शुद्ध जीव, संसारी जीव और मुक्त जीव।

शुद्ध जीव- जैसे अग्नि से स्फुलिङ्ग उत्पन्न होते हैं वैसे ही कारण स्वरूप अक्षर से जीव व्युत्पन्न होता है। अविद्या से सम्पर्क से पूर्व अतिरोहितानन्द, ऐश्वर्यादि षड् गुणों से युक्त जीव शुद्ध जीव कहलाता है।

संसारी जीव- तिरोहित आनन्दांश में माया के संसर्ग से ऐश्वर्य आदि के लोप होने पर जीव संसारी कहलाता है। अविद्या के सम्बन्ध के कारण उसका बन्ध उत्पन्न होता है। इसीलिए जन्म-मरण के चक्र में आबद्ध होता है। यह जीव सभी प्रकार के सुख-दुःख का भोग करता है और उसके लिए स्थूल-सूक्ष्म आदि नाना प्रकार के शरीरों को धारण करता है।

मुक्तजीव- संसारी जीव जब अनेक प्रकार के दु:खों के भोग के कारण आत्मा के उच्चतम काम युक्त भगवान् की शरण में आता है तब भगवान के अनुग्रह से वह माया से मुक्त होकर मूल स्वरूप को प्राप्त करता है। यही जीव की मुक्त अवस्था है।

15.3.4 जगत

यहाँ जगत सत्य स्वरूप होता है। जगत् साक्षात् ईश्वर का कार्य होता है, प्राकृत अथवा परमाणुजन्य और विवर्तरूप अथवा असत् रूप नहीं होता। ''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:'' यह श्रीमद्भगवद्गीता के वचन से सत् रूप से परमात्मा का असत् रूप प्रपञ्चन का सम्भव और असम्भव होना वर्णित है। अत: इनके मत में प्रपञ्च भगवत्कार्य है, उसका रूप माया द्वारा हुआ।

यह जगत् अधिकारी के भेद से भिन्न रूप में आभासित होता है। जैसे उत्तम अधिकारियों का यह सभी प्रकार का जगत् ब्रह्मात्मक और शुद्ध होता है। शास्त्र के अभ्यास द्वारा संस्कृतमति वालों के मत में जगत् परमात्म धर्म से युक्त सत् सत्यभूत होता है। जगत् में जो मायाधर्मी होते हैं वे तो मिथ्याभूत हैं। अविवेकी मानते हैं कि जगत् ब्रह्म और माया के धर्म से उत्पन्न कोई सत् वस्तु है। हरित उपनेत्र से जैसे सब कुछ हरा दिखता है परन्तु उसका हरित वर्ण मिथ्या होता है उसी प्रकार मायाधर्मी, 'सभी मिथ्या है', ये स्वीकार नहीं करते हैं। यह तो अधिकारियों की भेद दृष्टि होती है, जगत् का वास्तविक स्वरूप इस प्रकार का नहीं है। जगत् नित्य, सत्य, ब्रह्मस्वरूप होता है।

15.3.5 प्रमाण

शुद्धाद्वैत में तीन ही प्रमाण स्वीकार किये गए हैं। वे हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

''श्रुति: प्रत्यक्षमैतिह्यनुमानं चतुष्टयम्।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते''॥

ऐसा श्रीमद्भगवद् के वचनानुसार यद्यपि गोस्वामी पुरूषोत्तम द्वारा प्रस्थान रत्नाकार में इनका उल्लेख किया गया है परन्तु अधिक विद्वान इनका अर्न्तभाव शब्द प्रमाण में ही करते हैं। अत: तीन ही प्रमाण हैं।

15.3.6 मोक्ष का स्वरूप और उसके साधन

वैष्णव दर्शन में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तप से ऐकान्तिक निवृत्ति ही मोक्ष अथवा निर्वाण है। माया से बद्ध जीव की मुक्ति नहीं होती है। मुक्त जीव की पाँच प्रकार के अध्यास, देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अन्त:करणाध्यास और स्वरूप-

विस्मृति से निवृत्ति होती है। अध्यास से मुक्ति सत्य में जन्म-मरण से स्वत: निवृत्ति होती है। मुक्ति भी दो प्रकार की होती है- सात्विकों की सायुज्यमुक्ति होती है, निर्गुणों की ब्रह्मभावमुक्ति होती है। सायुज्यमुक्ति का नाम भगवल्लीलास्वाद है। जीव का श्रीकृष्ण के साथ दिव्य वृन्दावन में लीला तथा उनके साथ नित्य सम्बन्ध ही मोक्ष है। कुछ उत्तम अधिकारी जीव सत्संग आदि पुण्य से भक्तिमार्ग में कहे गए और अनुष्ठान द्वारा सालोक्यरूप, सायुज्यरूप, सामीप्यरूप और सारूप्यरूप मुक्ति को प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् अक्षर ब्रह्म में लीन होते हैं। यही ब्रह्मभावमुक्ति है और वह परमानन्द रूप है।

वल्लभाचार्य द्वारा उक्त क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति को आधार बनाकर बालकृष्णभट्ट द्वारा चार प्रकार की मुक्ति प्रतिपादित है। प्रथम ऐहिक मुक्ति है यथा सनक आदि मुनियों की। द्वितीय पारलौकिकी उत्तम अधिकारियों की वृन्दावन आदि दिव्यलोक में स्थिति। तृतीय परममुक्ति शुद्धब्रह्मरूप से अवस्थान। चतुर्थ देवताओं की नित्यलीलाप्रवेशरूप मुक्ति।

शुद्धाद्वैत में मोक्षसाधनत्व के द्वारा पुष्टिमार्ग का विधान किया गया है। आचार्य आनन्दतीर्थ द्वारा जैसे अपने दर्शन में मादासाधनत्व के द्वारा भक्तिमार्ग का विधान किया गया है वैसे ही वल्लभाचार्य के द्वारा पुष्टिमार्ग का आविष्कार विहित है। पुष्टिमार्ग के नामकरण का मुख्य आधार है- श्रीमद्भागवद्पुराण। वहाँ द्वितीय स्कन्ध में पुष्टि शब्द की विशद आलोचना की गई है। पुष्टि का अर्थ पोषण है। भगवान् के अनुग्रह से ही जीव का पोषण होता है, यथा श्रीमद्भागवत में उक्त है- पोषणं तदनुग्रह:। भक्ति मार्ग का ही अन्य नाम पुष्टिमार्ग है। यद्यपि वल्लभाचार्य ने कर्म, ज्ञान, भक्ति इन तीनों के ही भगवत्प्राप्ति के उपाय द्वारा ग्रहण किया तथपि भक्तिमार्ग की ही उनके द्वारा उत्कर्षता स्वीकार की गई है।

पाठगत प्रश्न 15.2

1. शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक कौन है?
2. शुद्धाद्वैत शब्द का निर्वचन प्रदर्शित कीजिए।
3. ललितत्रिभङ्गस्तोत्र किसके द्वारा रचित है?
4. शुद्धाद्वैत में कितने प्रकार के जीव सम्भव होते हैं?
5. शुद्धाद्वैत में जगत् सत्य है अथवा मिथ्या?
6. शुद्धाद्वैत के अनुसार प्रपञ्च का निमित्त कारण क्या है?
7. शुद्धाद्वैत में कितने प्रमाण स्वीकृत हैं?
8. जीव की मुक्ति का शुद्धाद्वैत में क्या स्वरूप है?
9. ब्रह्मसूत्र के ऊपर शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय सम्मत भाष्य क्या और किसके द्वारा रचित है?
10. जीव का परिमाण क्या है?

15.4 अचिन्त्यभेदा भेद

इस दर्शन के प्रवर्तक बलदेव आचार्य हैं। इनका अपर नाम विद्याभूषण हैं। इनके द्वारा सूत्र भाष्यों के ऊपर गोविन्दभाष्य नामक भाष्य रचित है। यह मत है कि श्रीकृष्णचैतन्य द्वारा प्रस्तुत यह मत गौड़ीय वैष्णवों के द्वारा अनुसृत और परिपालित है। इस प्रकार सुना जाता है कि श्रीकृष्णचैतन्य ने श्रीमद्भागवत और मध्यावाचार्य के पूर्ण प्रज्ञभाष्य को अपने मत के रूप में स्वीकार करके लोक में प्रचार किया। उनके भाष्य जहाँ जहाँ श्रीमद्भागवत का विरोधी होता है, वहाँ वहाँ उनके द्वारा परिष्कार का विधान हुआ। वह व्याख्या ही परम्परा क्रम से श्रीजीवगोस्वामी और विश्वनाथचक्रवर्ती विद्याभूषण महोदय द्वारा प्राप्त हुई। उसी व्याख्या को श्रीगोविन्द द्वारा स्वप्नदिष्ट किया गया और भाष्यरूप में रचा।

इस मत में वेदाध्ययन और वेदविहितकर्म द्वारा जिसका चित्त शुद्ध होता है, वह नित्य-अनित्य विवेक का अधिकारी होता है। इसमें ये पदार्थ स्वीकार किये जाते हैं- ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्म। जीव आदि पदार्थ चतुष्टय ब्रह्म सम्बद्ध कर्म केवल जड़ और वह अदृष्ट आदि नाना शब्दों के द्वारा व्यवहृत है। कर्म अनादि परन्तु विनाशी है।

15.4.1 ब्रह्म

विशुद्ध अनन्त गुण युक्त अचिन्त्य शक्तिमान सच्चिदानन्द विग्रह रूप श्रीकृष्ण ही जगत् का कारण हैं। यह नित्य ज्ञान, आनन्द आदि ये युक्त विभु हैं। प्रकृति द्वारा अस्पष्ट होकर स्वतन्त्र है। यही जीव के भोग-अपवर्ग का विधान करते हैं। रूपहीन होने पर भी भक्तों के उद्धार के लिए घृत-विग्रह होता है। लोकों के पालन के लिए ही यह पृथिवी पर अवतरित होते हैं। इसीलिए तीन प्रकार के अवतार स्वीकार किये जाते हैं - अंशावतार, गुणावतार और शक्त्यावेशावतार। वहाँ अंशावतार दो प्रकार है- पुरूषावतार यथा कारणर्गावशायी भगवान् नारायण, लीलावतार मत्स्य, कूर्म आदि। गुणावतार यथा ब्रह्मा, विषणु, महेश आदि। शक्त्यावेशावतार यथा सनक, व्यास आदि।

15.4.2 जीव

जीव ब्रह्म का ही एकदेश है परन्तु उससे भिन्न अणु परिमाण है। यह ज्ञाता सत्व आदि गुणत्रय से युक्त परमात्माधीर श्रीहरि का नित्यदास स्वरूप है। परमात्मा का अंश और उसका ही चैतन्यरूप, इस प्रकार अभिन्न तथा अणु परिमाण, ईश्वर नियम्य इस प्रकार जीव भिन्न भी होता है। तथा परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से भिन्न होकर भी अभिन्न है, यह दर्शन अचिन्त्यभेदाभेद कहा जाता है। परमात्मा का अंश भी दो प्रकार का होता है- स्वांश और स्वरूपांश। स्वांश का अर्थ मत्स्य आदि अवतार स्वीकार्य है। स्वरूपांश जीव है।

15.4.3 जगत्

परमात्मा माया शक्ति के प्रभाव से ईक्षण (इच्छा) मात्र से ही जगत की सृष्टि करता है। यह माया सत्व-रजस्-तमस् की साम्यावस्था तथा नित्य होती है। माया प्रकृति अविद्या, इत्यादि शब्दों के द्वारा व्यवहृत है। माया शक्ति और जीव शक्ति द्वारा परमेश्वर जगत का उपादान कारण और पराशक्ति द्वारा निमित्त कारण होता है। इससे परमात्मा से कूटस्थत्व का विरोध नहीं होता है। क्योंकि उपादान कारण का ही परिणाम होता है, न की निमित्त कारण का। निमित्त कारण के रूप में वह कूटस्थ ही रहता है। जगत् के निर्माण के लिए परमेश्वर का ईक्षण सत्य है, उससे ही पृथिवी आदि भूतों का भी सत्यत्व है।

यहाँ सृष्टि प्रक्रिया इस रूप में है- आदि में परमेश्वर ही था। उससे माया उत्पन्न हुई, परमात्मा के ईक्षण से ही वह कार्य-प्रवृत्त होती है। उससे अक्षर वाच्य अव्यक्त उत्पन्न होता है। अक्षर से महत् की उत्पत्ति, महत से अहंकार की उत्पत्ति होती है। सात्विक अहंकार से मन और देवताओं की (उत्पत्ति)। राजस् अहंकार से इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तामस् अहंकार से शब्द तन्मात्राओं की तत्पश्चात् पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं। सर्वत्र ही ब्रह्म कारणात्मा में प्रविष्ट होकर सृष्टिकार्य सम्पादित करता है। यहाँ मुख्यप्राण साक्षात् ब्रह्म से उत्पन्न है। इसमें मुख्यप्राण भौतिक वायु से भिन्न होने पर भी वह्नि आदि के समान सम्पूर्ण भिन्न पदार्थ नहीं है अपितु वायु-विशेष मात्र है। महाभूतों की उत्पत्ति के अनन्तर परमेश्वर की इच्छा द्वारा ही पञ्चीकरण द्वारा नाम-रूप से उनकी अभिव्यक्ति होती है, उससे स्थूल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है।

15.4.4 मोक्ष का स्वरूप और उसके साधन

यज्ञ, दान, तप, शम, दम आदि भक्ति वैराग्य, उपासना इत्यादि के अनुष्ठान के द्वारा भगवान प्रत्यक्ष होते हैं। भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् स्वयं की अचिन्त्य कृपा शक्ति से भक्त के समक्ष आत्मस्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। एक रूप होने पर भी वह सख्य, दास आदि नाना भाव से भक्त के निकट होने पर आत्मा को प्रकट करते हैं। जीव के वैराग्य उदित होने पर संन्यास स्वीकार करने का भी इस मत में विधान है। यहाँ भी ज्ञानोत्पत्ति में यज्ञ आदि कर्मों की आवश्यकता नहीं होती है, अतः ज्ञान-कर्म समुच्चयवाद इसमें भी स्वीकृत नहीं है। ब्रह्मलोक में गमनान्तर श्रीकृष्ण का सायुज्य ही मुक्ति है। यह मुक्ति ब्रह्मज्ञान होने पर भी जब तक प्रारब्ध का क्षय नहीं होता तब तक उपलब्ध नहीं होती। साधन द्वारा सिद्ध स्थूल शरीर के त्याग के अनन्तर सूक्ष्म शरीर द्वारा अर्चिरादि द्वारा देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक के ज्ञाता है और परब्रह्म को प्राप्त करता है। अथवा भगवान् उसके अतिप्रिय भक्त को अर्चिरादि द्वारा व्यतिरेक के द्वारा ही गरूड़कर्तृक स्वधाम को प्राप्त करवाते हैं। यहाँ उसके सूक्ष्म शरीर का नाश होता है, और ब्रह्मलोक में भोग के लिए योग्य शरीर उत्पन्न होता है। सत्य संकल्प सत्यकाम पुरूष यहाँ दिव्य ऐश्वर्य का अनुभव करता है। परमेश्वर के अनुग्रह से ही

वह सर्वज्ञ होता है परन्तु उसकी जगतसृष्टि की सामर्थ्यता नहीं होती। ब्रह्मलोक से मुक्तों का जगत में पुनरार्वतन नहीं होता है।

पाठगत प्रश्न 15.3

1. अचिन्त्यभेदाभेद सम्मत भाष्य किसके द्वारा रचित है?
2. गोविन्द भाष्य किसको आधारित करके लिखा गया है?
3. परमात्मा कैसे जगत् की सृष्टि करता है?
4. सात्विक अहंकार से किनकी उत्पत्ति होती है?
5. अवतार कितने प्रकार के स्वीकृत हैं?
6. मत्स्य कूर्म आदि किस प्रकार के अवतार हैं?
7. अचिन्त्यभेदाभेद में कौन अधिकारी है?
8. मुक्त पुरूष अल्पज्ञ है अथवा सर्वज्ञ?

पाठसार

उपनिषदों में मानवों की परम पुरूषार्थ साधिका ब्रह्मविद्या उपदिष्ट है। अत एव उपनिषद् ही समग्र वेद के सारभूत रूप में होने पर वेदान्त शब्द से व्यवहृत है। उपनिषद् वाक्यों को आधारित करके ही भगवान् बादरायण के द्वारा सूत्रात्मक ग्रन्थ प्रणीत है। यहाँ आपातविरूद्ध-वाक्य समन्वित होते हैं। इस ग्रन्थ को आश्रित करके ही विविध भाष्य रचे गए हैं, उसके अनुसार सम्प्रदाय भी प्रारब्ध है।

अद्वैत दर्शन शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित है। इसमें केवल ब्रह्म की सत्ता ही स्वीकार की जाती है। शुद्ध ब्रह्म ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करने में असमर्थ होने से नेति नेति मुख द्वारा सर्वत्र व्यपदिष्ट है। अतः द्वैत के निषेध के कारण यह अद्वैत कहा जाता है। यहाँ जगत् शक्ति रूप में प्रतिपाभासित होता है, यथार्थ नहीं। जीव ब्रह्मस्वरूप ही होता है और उसका विभु परिमाणत्व स्वीकार किया जाता है। और मोक्ष विस्मृत कण्ठस्थ हार की प्राप्ति के समान होता है।

शुद्धाद्वैत दर्शन वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित है। वैष्णव सम्प्रदायों में ही इसके मत का अन्तर्भाव होता है। इस मत में जगत् सत्य होता है, ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण। जीव ब्रह्म से उत्पन्न नित्यरूप, अणु परिमाण है। इस प्रकार मोक्ष लाभ के लिए पुष्टि मार्ग विहित है। मोक्ष प्रकार भी विविध रूप से दर्शित हैं।

टिप्पणी

अचिन्त्यभेदाभेद अत्यन्त नवीन दर्शन है। इसके प्रवर्तन में मुख्य वस्तुतः श्रीकृष्णचैतन्य, जिन्होंने मध्वाचार्य के पूर्णप्रज्ञभाष्य को श्रीभागवत के अनुसार व्याख्यात किया। उसका ही ग्रन्थरूप बलदेव ने गोविन्दभाष्य के रूप में प्रदान किया। यहाँ भी जगत् सत्य है। जीव ब्रह्म से उत्पन्न, उसके ही अंश स्वरूप परन्तु उससे भिन्न होते है। जीव का परिमाण अणुपरिमाण होता है। यहाँ श्रीकृष्ण सायुज्य ही मुक्ति है और सख्य दास आदि भाव से उसकी सेवा ही मोक्षोपाय है।

पाठान्त प्रश्न

1. वेदान्त दर्शन के विषय में कुछ आलोचना कीजिए।
2. अद्वैत वेदान्त के कुछ आचार्यों के विषय में संक्षिप्त में निरूपण कीजिए।
3. अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म-स्वरूप की आलोचना कीजिए।
4. माया के वैशिष्ट्य को अद्वैत के अनुसार वर्णित कीजिए।
5. मोक्ष कैसे प्राप्त हो, इस विषय में अद्वैतशास्त्र में क्या उपदिष्ट है?
6. कुछ शुद्धाद्वैतियों के आचार्यों के विषय में वर्णन कीजिए।
7. जीवों का स्वरूप शुद्धाद्वैत में कैसे प्रतिपादित है?
8. पुष्टिमार्ग के द्वारा क्या होता है?
9. शुद्धाद्वैत में जीव की मुक्ति का क्या स्वरूप है?
10. अचिन्त्यभेदाभेद में जीव की मुक्ति कैसे प्रतिपादित होती है?
11. शुद्धाद्वैत में ब्रह्म का स्वरूप क्या है?
12. अचिन्त्यभेदाभेद के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया किस प्रकार की है?
13. अद्वैत में ब्रह्म निर्गुण कैसे है और जगत का उपादान कारण और निमित्त कारण कैसे है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-15.1

1. उत्तर मीमांसा दर्शन वेदान्त दर्शन का अन्य नाम है।
2. वेदान्त दर्शन ब्रह्मसूत्र को आधारित करके प्राप्त है।

3. वेदान्त शब्द से उपनिषद् कहा जाता है।
4. वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक भगवान् बादरायण हैं।
5. ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं। उनके नाम यथाक्रम हैं- समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय, फलाध्याय।
6. अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य हैं।
7. अद्वैत वेदान्त में शंकर से परवर्ती तीन आचार्य हैं यथा, पद्मपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य, वाचस्पतिमिश्र
8. सुरेश्वराचार्य के गुरू शंकराचार्य हैं।
9. जहाँ द्वैत नहीं है वह अद्वैत है, इसका अर्थ द्वैत निषेध है।
10. पञ्चपादिका पद्मपादाचार्य के द्वारा रचित है, ब्रह्मसूत्र की चतुःसूत्रीभाष्य को आधारित करके।

उत्तर-15.2

1. ब्रह्म का स्वरूप लक्षण सच्चिदानन्द है।
2. ब्रह्म का तटस्थ लक्षण जगज्जन्मादिकारणत्व है।
3. जीव अद्वैत में ब्रह्मस्वरूप ही है। और वह विभुपरिमाण है।
4. अद्वैत में जगत शुक्ति में रजत के समान प्रतिभासिक मिथ्या है।
5. अद्वैतवेदान्त में छः प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं। वे हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि।

उत्तर-15.3

1. शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक वल्लभाचार्य हैं।
2. शुद्धाद्वैत शब्द का निर्वचन है -

   शुद्धयोः अद्वैतं शुद्धाद्वैतमिति षष्ठी तत्पुरूषः,

   शुद्ध च अद्वैतं च शुद्धाद्वैतम इतिकर्मधारयसमासः।
3. ललितत्रिभङ्गस्त्रोत विट्ठलनाथ द्वारा रचित है।
4. शुद्धजीव-संसारीजीव-मुक्तजीव, शुद्धाद्वैत में तीन प्रकार के जीव सम्भव होते हैं।
5. शुद्धाद्वैत में जगत् सत्य होता है।
6. शुद्धाद्वैत के अनुसार प्रपञ्च का निमित्त कारण ब्रह्म ही होता है।

टिप्पणी

7. शुद्धाद्वैत में तीन प्रमाण स्वीकृत हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।
8. भगवान के अनुसार मूलस्वरूप का शुद्धब्रह्म के द्वारा अवस्थान ही मुक्ति है।
9. ब्रह्मसूत्र के ऊपर शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय सम्मत भाष्य होता है- अणुभाष्य (जो) वल्लभाचार्य द्वारा रचित है।
10. जीव का परिमाण अणुपरिमाण है।

उत्तर-15.4

1. अचिन्त्यभेदाभेद सम्मत भाष्य बलदेव द्वारा रचित है।
2. गोविन्दभाष्य बादरायण प्रणीत ब्रह्मसूत्र पर आधारित है।
3. परमात्मा ईक्षण मात्र से जगत् का सृजन करता है।
4. सात्विक अहंकार से मन और देवताओं की उत्पत्ति होती है।
5. तीन प्रकार के अवतार स्वीकृत हैं- अंशावतार, गुणावतार और शक्त्यावेशवतार।
6. मत्स्य, कूर्म आदि लालवतार हैं।
7. अचिन्त्यभेदाभेद में नित्यानित्यविवेकवान अधिकारी होता है।
8. मुक्त पुरूष सर्वज्ञ होता है।

॥ पन्द्रहवाँ पाठ समाप्त॥